सत्राध्यक्ष का मन्तव्य-पुराण प्रतिपाद्य

प्रो. विश्वनाथ भट्टाचार्य

अग्निपुराण की विषयवस्तु की ओर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूत-मागधों की पौराणिक परम्परा समग्र संस्कृत वाङ्मय का कोषात्मक प्रतिनिधित्व करती है। पुराणों के विशिष्ट प्रतिपाद्य—सृष्टि, पुनः सृष्टि, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—को यह पुराण छू कर निकल गया है। सूर्यवंश में रामायण कथा, कृष्णवंशवर्णन, महाभारतोपाख्यान, बुद्ध का कीर्तन तथा प्रासङ्गिक सृष्टि और मन्वन्तर आदि का वर्णन इसमें व्यापक रूप में किया गया है। रामायण में उत्तरकाण्ड की कथा का होना और बुद्ध की चर्चा इस पुराण की कालसीमा को अवश्य संकेतित करती है। 300 ई. तक रामायण में उत्तर कांड का संयोजन विद्वान् लोग मानते हैं। इस दृष्टि से भी रामायण कथा में किसी नए तथ्य की संभावना कम है। प्रश्न यह भी उठता है कि सम्पूर्ण सप्तकांड रामायण और अष्टादशपर्व महाभारत के रहते हुए इन कथाओं के विस्तृत विवरण की उपयोगिता क्यों अनुभूत हुई? क्या चर्वितचर्वणा भी पुराणों का लक्ष्य रही है?

यही प्रश्न अन्य अनेक प्रतिपाद्यों के बारे में उत्पन्न होता है। पौराणिकता शास्त्रों के निष्णात विद्वान् नहीं माने जा सकते हैं। सांख्य हो या वेदान्त—उसका प्रतिपाद्य तत्तत् सम्प्रदाय के शास्त्रग्रन्थों से ही ग्राह्य है, पुराणों से नहीं। अमरकोष के रहते हुए संक्षिप्त शब्दार्थकोश, छन्द और अलंकार सम्बन्धी अध्याय, व्याकरण, आयुर्वेद आदि पर अनेक अध्याय—किस भावना से, पौराणिक परम्परा के बाहर जा कर भी, इसमें जोड़े गए हैं इसका विवेचन करणीय है। क्या यह पुराण ऐसे एक युग को सूचित करता है जब शास्त्रग्रन्थ विलुप्त हो रहे थे और उनके संक्षिप्त प्रसार पुराण में जोड़ दिये गये हैं?

पुराण साहित्य के प्रति लौकिक संस्कृत साहित्य का दृष्टिकोण भी विलक्षण रहा है। व्यापक सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य में—काव्य-नाट्यों में, पौराणिक उपाख्यान नहीं के बराबर हैं। कालिदास की उक्ति—'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्', बाणभट्ट की उक्ति—'पुराणेष्वेव वायुप्रलपितम्' आदि में श्लेष की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। धनञ्जय उपजीव्य स्रोतों के बारे में कहा है—"इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च" से भी पुराणों को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। पुराणों को स्वतः प्रमाण वेद जैसी मान्यता भी प्राप्त नहीं है।

ऐसी स्थिति में सुविशाल पुराण साहित्य में प्रतिपादित विषयों का ज्ञान मात्र की उपयोगिता के प्रसंग में विशेष मूल्यांकन अपेक्षित है। भारतीय मानव समाज को चेतना के किस धरातल पर उन्नीत करने का ध्येय पुराण साहित्य का मूलाधार रहा है—इसका विवेचन कालिक परिप्रेक्ष्य में करना नितान्त काम्य है। नहीं तो केवल प्रतिपादित विषयों के सामान्य आकलन हमारा ज्ञान वर्धन अवश्य करेगा, पर उस ज्ञान की जीवनोपयोगिता स्पष्ट नहीं हो पायेगी।

पुराण साहित्य में प्रधानतः अवतारवाद और चतुर्युग की मान्यता पुनः पुनः चर्चित है। उत्तरोत्तर अपकर्ष के आधार पर सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि के रूप में चार युगों की अवधारणा मनुष्य के अन्याय से न्याय की ओर, अधर्म से धर्म की ओर, पशुता से देवत्व की ओर अग्रसर होने की भावना और प्रयत्न को नकारती है। यदि हम निश्चित हों कि हमारा भविष्य अन्धकारमय है, 'महती विनष्टि' है तो हमारा उद्धार कौन करेगा। अवतार के लिए भी संभवतः इस ग्लानि को दूर करना संभव नहीं है। और हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि कलि के लिए विशेष कोई अवतार भी नहीं माने गए हैं। सभी अवतार धर्म की अधिकतर भूमिका वाले सत्य, त्रेता आर द्वापर में ही समाविष्ट हैं।

मानव जीवन की सार्थकता जिस विश्वगत सद्भावना से सम्भव है उस सद्भावना के बीज हमें प्राचीन ज्ञान

सम्पदा से आहरण करना चाहिए—उसी आहरण की प्रेरणा निश्छल युक्ति-परम्परा द्वारा हमें पुराणों से प्राप्त हो इतना ही कह सकने का मैं साहस करता हूँ।

अब सत्राध्यक्ष के रूप में कुछ निवेदन करना चाहूँगा। सर्वप्रथम मैं आज के तीन निबन्ध रचयिताओं का साधुवाद करता हूँ। डा. प्रभुनाथ द्विवेदी ने 'अग्निपुराण में चर्चित व्रतों का महत्त्व' शीर्षक शोधात्मक प्रस्तुति में पुराणकार की दृष्टि में मानव जीवन में व्रतों के महत्त्व का बड़ा ही सांगोपांग विवरण प्रस्तुत किया है। तिथि, मास, नक्षत्र के साथ साथ वार विहित व्रतों का आकलन विशेष महत्त्व रखता है। भारतीय धर्मकृत्यों में वार का यह महत्त्व संभवत: अग्निपुराण की या पौराणिक धर्मभावना की ही विशेष देन है। द्वितीय निबन्ध था Grammatical Discussion in the Agnipurāṇa, विद्वान् विवेचक डा. सुकुमार चट्टोपाध्याय ने युक्तिपूर्ण ढंग से अग्निपुराण में समायोजित स्कन्दप्रोक्त व्याकरण की गहराई से चर्चा की है। अग्निपुराण में स्कन्द (वक्ता) और कात्यायन (श्रोता) की प्रासंगिकता यद्यपि 'चिन्त्य' है तथापि व्याकरण सम्बन्धी सभी प्रमुख तत्त्वों का यह उपपादक विशेष महत्त्व रखता है। डा. चट्टोपाध्याय ने कातन्त्रव्याकरण की ही सामान्य रूपरेखा के रूप में इसे प्रमाणित किया। Monistic Concepts in the Agnipurāṇa, पर डा. प्रणति घोषाल का लेख भी पुराणों पर वैदान्तिक भावनाओं के प्रभाव का तथ्यपूर्ण प्रतिपादन है। अद्वैततत्त्व के साथ विष्णुभक्ति का विशिष्ट समावेश इस विवेचन की मुख्य बिन्दु रहा है। मैं इन तीनों विवेचकों का आन्तरिक साधुवाद करता हूँ।

* * *